Shree Nisargadatta Samadhi Charitable Trust, Mumbai

श्री निसर्गदत्त समाधी चॅरिटेबल ट्रस्ट, मुंबई द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक

NISARGAVAANI

निसर्गवाणी ನಿಸರ್ಗವಾಣಿ निसर्गबानी

वर्ष २ रे अंक : ५ वा (जुलै ते सप्टेंबर २०२६) Year 2nd Issue 5th (July - September 2026)

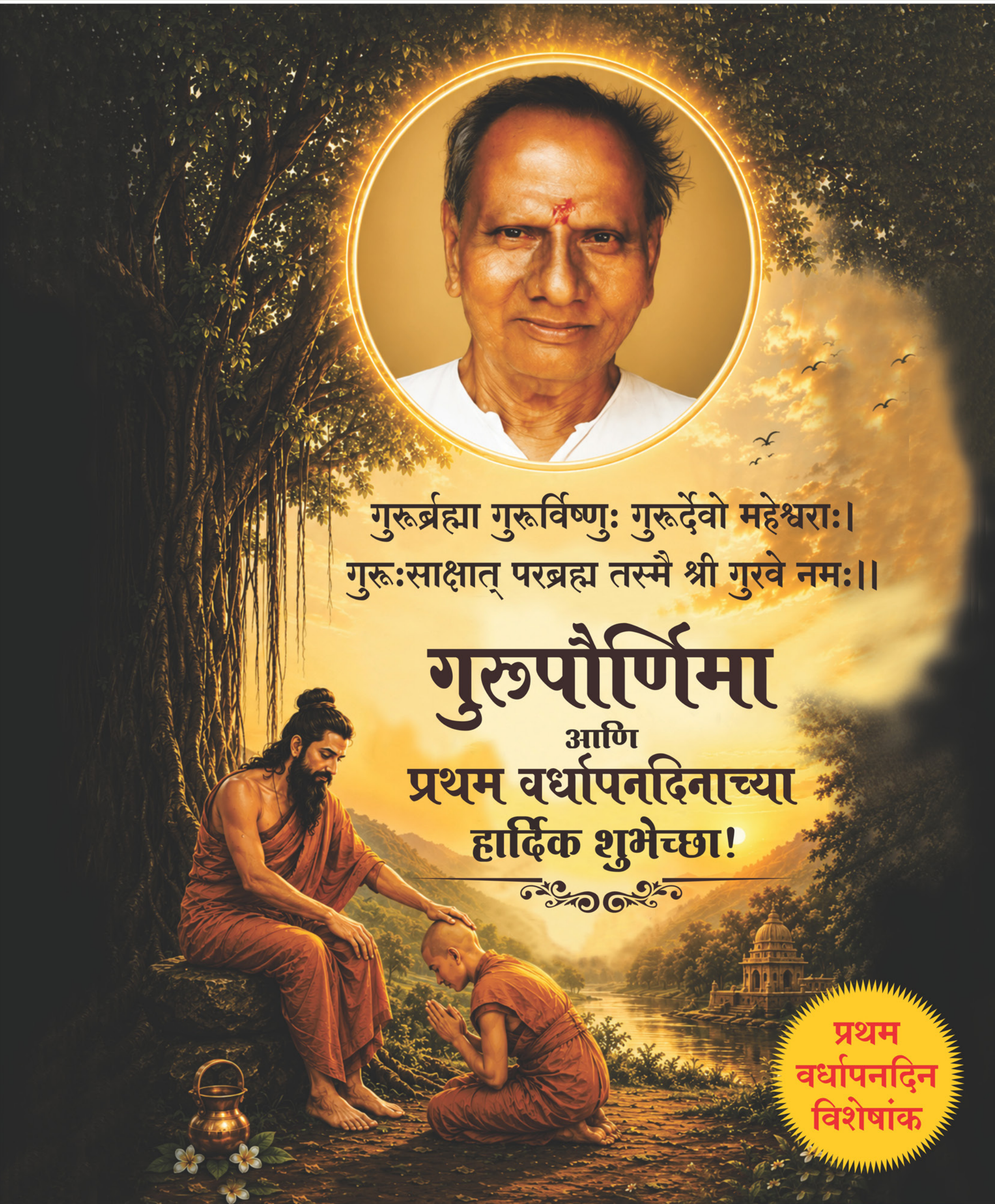

संपादक
डॉ. धीरज सर्वज्ञ : +91 9881314214
विजया नाझरे : +91 9403707936 स्मिता थोरात : +91 8698863395
तुषार नाईक : +91 8369105437 / 982188356

मुखपृष्ठ रचना: भरतभाई शिंपी, जळगाव
लेआउट डिजाइन
झेन प्रकाशन, मुंबई (निसर्गवानी टीम इनपुट अनुसार)
वेबसाईट: www.nisargdattasamadhi.in
ईमेल: nisargadattasamadhitrust2025@gmail.com

लेखों के लिए अपील

चूँकि कोई भी पत्रिका संभावित लेखकों के लेखों पर निर्भर करती है, हम आप सभी से हमें लेख भेजने की अपील करते हैं। आत्मज्ञान सभी धर्मों, जाति और पंथ से परे है। इस पहलू को याद करते हुए निसर्गवाणी में न केवल श्री निसर्गदत्त महाराज द्वारा वर्णित आत्म-ज्ञान से संबंधित विषयों की एक विस्तृत श्रृंखला होगी, बल्कि विभिन्न संतों की आत्म-ज्ञान की शिक्षाएं, उनके तरीकों के अभ्यास से संबंधित अनुभव, जीवनी, शिक्षाएं, अन्य आध्यात्मिक गुरुओं द्वारा सिखाए गए तरीकों के अभ्यास से संबंधित अनुभव, हिंदू धर्म के अलावा अन्य धर्मों की शिक्षाएं और कहानियां, पवित्र ग्रंथों और छंदों की व्याख्या, आध्यात्मिक यात्रा और अंतर्दृष्टि, कविता और निश्चित रूप से हमारे योग्य पाठकों से प्रतिक्रिया भी शामिल होगी। हमारा दृढ़ विश्वास है कि आध्यात्मिकता का अपने आप में एक व्यापक और विविध आवरण पहलू है।

सुझाव

एक दिशानिर्देश के रूप में, हम अनुरोध करते हैं कि जहां तक संभव हो लेख छोटे (लगभग 750 शब्द) मध्यम (लगभग 1500 शब्द) या लंबे प्रारूप (लगभग 2300 शब्द) में होने चाहिए

कृपया अपना योगदान भेजें
through email to
nisargavaani240125@gmail.com

संपादकीय

नवयुग: व्यक्तिगत एवं वैश्विक चुनौतियाँ - श्री निसर्गदत्त महाराज की उपदेश के प्रकाश मे

वर्तमान युग विज्ञान, तकनीति, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, वैश्वीकरण एवं अभूतपूर्व गति से सूचना आदान प्रदान। मानव ने वाह्य आकाश (अंतरिक्ष) का अनुसंधान किया है, कृत्रिम बुद्धिमत्ता का विकास किया है, संचार को तात्क्षणिक बनाया है और जीवन को अधिक सुविधाजनक और कार्यकुशल बना लिया है। फिर भी, इस उल्लेखनीय भौतिक प्रगति के साथ-साथ मनुष्य का मन पहले की अपेक्षा अधिक अशांत, चिंतित और एकाकी (अकेलापन) दिखाई देता है। जैसे-जैसे बाह्य विकास और प्रगति की गति तीव्र होती गई है, वैसे-वैसे आंतरिक शांति, तृप्ति और अध्यात्मिक स्थिरता में निरंतर कमी आती गई है। आधुनिक समाज में सफलता, धन-संपत्ति और प्रसिद्धि को प्रायः जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य के रूप में देखा जाता है। परिणामस्वरूप, अनेक व्यक्ति धीरे-धीरे अपने अस्तित्व (जीवन) के सच्चे उद्देश्य से दूर होते जा रहे हैं।

आज प्रत्येक व्यक्ति अनेक व्यक्तिगत चुनौतियों का सामना कर रहा है। मानसिक तनाव, अवसाद, भविष्य की चिंता, रोजगार की असुरक्षा, प्रतिस्पर्धा का दबाव, संबंधों में बढ़ती जटिलताएँ तथा दूसरों से निरंतर अपनी तुलना करने की प्रवृत्ति ने मनुष्य को अधिक अशांत और व्याकुल बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप वह अपने वास्तविक स्वरूप की खोज करने और अंतर्मुख होने के बजाय बाहरी परिस्थितियों में ही उलझा रहता है। सोशल मीडिया के प्रभाव ने इस स्थिति को और भी गहरा कर दिया है। लोग निरंतर अपने जीवन की तुलना दूसरों की उपलब्धियों और सफलताओं से करते रहते हैं, जिससे अपने जीवन के प्रति असंतोष और हीनता की भावना बढ़ती जाती है। भौतिक सुख-सुविधाओं और संसाधनों में अभूतपूर्व वृद्धि होने के बावजूद, मन की शांति, आत्मविश्वास और वास्तविक आनंद आज भी दुर्लभ है। ऐसी स्थिति में “मेरे

जीवन का उद्देश्य क्या है?” और “सच्चा सुख कहाँ प्राप्त हो सकता है?” जैसे प्रश्न असंख्य लोगों के मन को निरंतर उद्वेलित करते रहते हैं।

साथ ही साथ, संपूर्ण विश्व अनेक गंभीर वैश्विक चुनौतियों का सामना कर रहा है- जलवायु परिवर्तन, पर्यावरण प्रदूषण, वनों की कटाई, जल संकट, जैव-विविधता का ह्रास, युद्ध, आतंकवाद, आर्थिक असमानता तथा नैतिक मूल्यों का पतन आधुनिक युग को परिभाषित करती वास्तविकताएँ हैं। यद्यपि विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने उल्लेखनीय प्रगति की है, फिर भी करुणा, सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व, संयम तथा साझा मानवता की भावना जैसे गुण जीवन के अनेक क्षेत्रों में कमजोर पड़ते दिखाई दे रहे हैं। बाहरी विकास और आंतरिक परिपक्वता के बीच बढ़ती हुई खाई आधुनिक सभ्यता के समक्ष उपस्थित सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक बन गई है।

इन सभी समस्याओं के मूल में क्या है-इस प्रश्न का श्री निसर्गदत्त महाराज अत्यंत गहन, किंतु आश्चर्यजनक रूप से सरल उत्तर देते हैं। उनके अनुसार, मनुष्य का मूल दुःख बाहरी परिस्थितियों से, बल्कि अपनी वास्तविक पहचान के संबंध में हुई भूल से उत्पन्न होता है। मनुष्य स्वयं को केवल शरीर, मन, नाम या व्यक्तित्व मान बैठता है, और इसी मिथ्या तादात्म्य से अहंकार, इच्छाएँ, भय, अपेक्षाएँ तथा असुरक्षा की भावनाएँ जन्म लेती हैं। सीमित ‘मैं’ के साथ यह मिथ्या पहचान ही समस्त दुःखों का वास्तविक मूल कारण है।

श्री निसर्गदत्त महाराज की शिक्षाओं का केंद्रीय उद्देश्य मनुष्य को उसके वास्तविक और शाश्वत स्वरूप का प्रत्यक्ष बोध कराना है। वे बताते हैं कि प्रत्येक विचार, भावना, इच्छा और अनुभव से पहले एक सहज अनुभूति उपस्थित रहती है –”**मैं हूँ**”। यह अस्तित्व-बोध किसी नाम, रूप या व्यक्तित्व तक सीमित नहीं है। इसी शुद्ध जागरूकता में स्थिर होना अपने वास्तविक आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होना है। महाराज के अनुसार, सच्ची आध्यात्मिक साधना बाहरी कर्मकांडों, धार्मिक अनुष्ठानों या जटिल साधनाओं में नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व के इस मूल “**मैं हूँ**” के निरंतर साक्षीभाव और अवलोकन में निहित है।

महाराज **साक्षीभाव** में स्थित रहने पर विशेष बल देते हैं। विचार उत्पन्न होते हैं और विलीन हो जाते हैं, भावनाएँ निरंतर बदलती रहती हैं, तथा सुख और दुःख आते-जाते रहते हैं; किंतु इन सभी अनुभवों का साक्षी सदैव अपरिवर्तित रहता है। यदि मनुष्य विचारों और भावनाओं को अपना स्वरूप मानने के बजाय केवल आते-जाते घटनाक्रम के रूप में देखना सीख ले, तो मानसिक तनाव और भय स्वाभाविक रूप से

क्षीण होने लगते हैं। तब वह मन की प्रत्येक गतिविधि पर अंधविश्वास करने के स्थान पर उसे स्पष्टता, विवेक और अनासक्ति के साथ देख पाने की क्षमता विकसित करता है। यही महाराज की शिक्षाओं का सबसे व्यावहारिक और जीवन-परिवर्तनकारी पक्षों में से एक है।

महाराज की शिक्षाएँ आधुनिक जीवन की तीव्र प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावादी संस्कृति और निरंतर बढ़ती अपेक्षाओं से उत्पन्न तनाव एवं चिंता का भी गहन विश्लेषण प्रस्तुत करती हैं। प्रत्येक पूर्ण हुई इच्छा एक नई इच्छा को जन्म देती है, और यदि इच्छा पूर्ण न हो तो दुःख उत्पन्न होता है। इसलिए महाराज स्पष्ट करते हैं कि वास्तविक सुख बाहरी वस्तुओं या परिस्थितियों में नहीं, बल्कि अपने वास्तविक स्वरूप की जागरूकता में निहित है। जब मनुष्य अपने भीतर विद्यमान शांति का अनुभव कर लेता है, तब परिस्थितियाँ कितनी भी क्यों न बदल जाये, उसका आंतरिक संतुलन और शांति नहीं बदलती।

महाराज की अद्वैत दृष्टि पर्यावरणीय तथा वैश्विक समस्याओं को समझने के लिए भी एक गहन परिप्रेक्ष्य प्रदान करती है। जब मनुष्य स्वयं को समग्र अस्तित्व से पृथक मानता है, तब वह प्रकृति का शोषण करता है, दूसरों के साथ संघर्ष में उलझता है और स्वार्थ-केंद्रित जीवन जीने लगता है। किंतु जब उसे यह बोध हो जाता है कि समस्त प्राणी और सम्पूर्ण ब्रह्मांड उसी एक चैतन्य की अभिव्यक्तियाँ हैं, तब करुणा, सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व और उत्तरदायित्व की भावना स्वाभाविक रूप से विकसित होती है। ऐसी दृष्टि से पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक न्याय और वैश्विक शांति केवल सामाजिक या नैतिक आदर्श नहीं रह जाते, बल्कि उन्हें एक गहन आध्यात्मिक आधार प्राप्त होता है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence), स्वचालन (Automation) और उभरती हुई प्रौद्योगिकियाँ आने वाले वर्षों में मानव जीवन के अनेक आयामों को गहराई से परिवर्तित करेंगी। किंतु आत्मज्ञान, प्रेम, करुणा, विवेक, आंतरिक शांति और साक्षीभाव जैसे मूल्य ऐसे हैं, जिन्हें कोई भी मशीन कभी उत्पन्न नहीं कर सकती। इसलिए यह संभावना अधिक है कि भविष्य में आध्यात्मिक जागरूकता का महत्व घटने के बजाय और भी अधिक बढ़ेगा। विज्ञान मनुष्य को बाह्य जगत को समझने की क्षमता प्रदान करता है, जबकि अध्यात्म उसे अपने वास्तविक स्वरूप के ज्ञान की ओर ले जाता है। नए युग में मानवता के समग्र कल्याण और संतुलित विकास के लिए इन दोनों का सामंजस्यपूर्ण समन्वय अनिवार्य है।

श्री निसर्गदत्त महाराज की शिक्षा दैनिक जीवन में अत्यंत व्यावहारिक है। यदि मनुष्य प्रतिदिन कुछ समय शांत बैठकर **"मैं हूँ"** की अनुभूति पर ध्यान दे, विचारों से संघर्ष करने के बजाय उनका साक्षीभाव से अवलोकन करे, प्रत्येक कर्म को पूर्ण सजगता के साथ संपन्न करे, तथा स्वयं और दूसरों के प्रति करुणा एवं संवेदनशीलता का व्यवहार रखे, तो उसके भीतर मानसिक स्थिरता, विवेक और आंतरिक शांति का स्वाभाविक विकास होता है। जब ऐसा आंतरिक परिवर्तन किसी एक व्यक्ति में घटित होता है, तो उसका प्रभाव केवल उसी तक सीमित नहीं रहता; वह उसके परिवार, समाज और अंततः समस्त मानवता तक प्रसारित होता है।

अंत में यह कहा जा सकता है कि नए युग की चुनौतियाँ केवल आर्थिक, सामाजिक या तकनीकी नहीं हैं; वे मानव-चेतना, उसकी पहचान और जीवन के प्रति उसकी समझ से गहराई से जुड़ी हुई हैं। श्री निसर्गदत्त महाराज की शिक्षा बाह्य संसार का त्याग करने का आह्वान नहीं करती, बल्कि अपने वास्तविक स्वरूप को पहचानने की प्रेरणा देती है।

साक्षीभाव में जीते हुए मनुष्य अपने व्यक्तिगत दुःखों को बहुत हद तक कम कर सकता है, अपने मानवीय संबंधों को अधिक सामंजस्यपूर्ण और सुदृढ़ बना सकता है, तथा वैश्विक चुनौतियों का सामना अधिक उत्तरदायित्व, करुणा और विवेक के साथ करने के लिए प्रेरित हो सकता है। यही कारण है कि आधुनिक युग में श्री निसर्गदत्त महाराज की शिक्षाओं की प्रासंगिकता पहले की अपेक्षा और भी अधिक प्रतीत होती है।

जय सद्गुरु।

जब मैं खुद को समझता हूं, मैं आपको समझता हूं,
और उस समझ से प्यार आता है।

– जिद्दू कृष्णमूर्ति

श्री निसर्गदत्त समाधी
चॅरीटेबल ट्रस्ट

Nisargavaani

निसर्गवाणी ನಿಸರ್ಗವಾಣಿ निसर्गबानी

वर्ष २रा अंक: ५वा जुलै - सप्टेंबर २०२६

अ नु क्र म णि का

एक वर्ष निसर्गवाणी के संग: डिजिटल त्रैमासिक अंक

पॉल वर्विश और श्री निसर्गदत्त महाराज

सत् चित् आनंद

भगवद्गीता की शिक्षाएँ और श्री निसर्गदत्त महाराज का ‘आई ऐम दैट’

एक वर्ष निसर्गवाणी के संग: डिजिटल त्रैमासिक अंक

फरवरी 2022 में श्री निसर्गदत्त समाधि मंदिर की स्थापना हुई और वर्ष 2024 में एक धर्मार्थ ट्रस्ट (चैरिटेबल ट्रस्ट) का गठन किया गया। ट्रस्ट की स्थापना के साथ दो महत्वपूर्ण उद्देश्यों की परिकल्पना की गई। पहला, ट्रस्ट की एक आधिकारिक वेबसाइट विकसित करना, और दूसरा, ट्रस्ट के संरक्षण में एक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ करना। इस पहल की प्रेरणा मिली – **इंचेगिरी परंपरा** से जुड़े अनेक आध्यात्मिक केंद्रों द्वारा अपने-अपने सद्गुरुओं तथा शिष्यों की शिक्षाओं, प्रवचनों और अनुभवों के संरक्षण एवं प्रसार के लिए वर्षों से पत्रिकाएँ, त्रैमासिक जर्नल, स्मारिका अंक तथा अन्य साहित्यिक प्रकाशन के कार्य को देखकर।

कई वर्षों से श्री निसर्गदत्त महाराज की शिक्षाएँ विश्वभर के जिज्ञासुओं तक पहुँचती रही हैं। आज भी इंचेगिरी परंपरा के बाहर असंख्य साधक उनकी शिक्षाओं का अध्ययन कर उनसे प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। फिर भी यह अनुभव किया गया कि ऐसा कोई नियमित त्रैमासिक, अर्धवार्षिक अथवा वार्षिक प्रकाशन किसी भी आध्यात्मिक केन्द्र से प्रकाशित नहीं हो रहा है, जो केवल महाराज की शिक्षाओं का ही नहीं, बल्कि निंबरगी संप्रदाय को सुशोभित करने वाले संतों के जीवन, उपदेशों तथा उनकी आध्यात्मिक विरासत का भी सम्यक् परिचय प्रस्तुत करे।

मुद्रण में आने वाले अत्यधिक व्यय, प्रत्येक तीन माह में पाठकों तक पत्रिका पहुँचाने के लिए किसी समर्पित वितरण व्यवस्था के अभाव तथा डाक एवं कूरियर सेवाओं पर होने वाले निरंतर खर्च को ध्यान में रखते हुए यह अनुभव किया गया कि त्रैमासिक पत्रिका का डिजिटल स्वरूप कहीं अधिक व्यावहारिक और उपयुक्त रहेगा।

डिजिटल पत्रिका को ट्रस्ट की वेबसाइट पर सहजता से उपलब्ध कराया जा सकता है, जिससे वह विश्वभर के पाठकों तक तत्काल पहुँच सके। इस डिजिटल माध्यम के द्वारा संसार के प्रत्येक कोने में रहने वाले जिज्ञासु और साधक इसे अत्यंत सरलता से प्राप्त कर सकेंगे। साथ ही, यह किसी भी व्यक्ति के लिए, किसी भी स्थान से और किसी भी समय सुलभ रहेगी, जिससे पाठक अपनी सुविधा के अनुसार इसके विषय-वस्तु का अध्ययन कर सकेंगे।

भारत तथा विदेशों में रहने वाले पाठकों की विविध भाषाई पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय लिया गया कि '**निसर्गवाणी**' का प्रकाशन चार प्रमुख भाषाओं-अंग्रेज़ी, मराठी, हिन्दी तथा कन्नड़-में किया जाए। इस बहुभाषी दृष्टिकोण के माध्यम से पत्रिका को अधिकाधिक पाठकों तक पहुँचाना तथा विभिन्न प्रदेशों एवं भाषाई समुदायों के जिज्ञासुओं और साधकों के लिए इन शिक्षाओं को सहज रूप से सुलभ बनाना संभव होगा।

एक अन्य महत्वपूर्ण विचार यह भी था कि विभिन्न प्रदेशों में निवास करने वाले शिष्य एवं भक्त डिजिटल माध्यम से अपने लेख, संस्मरण, अनुवाद, शोध-लेख तथा अन्य सामग्री सहजता से भेज सकेंगे। इससे इस प्रकाशन की प्रक्रिया में उनकी सहभागिता अधिक सरल, सुविधाजनक और व्यापक बन सकेगी।

साथ ही, नई पीढ़ी की सक्रिय सहभागिता तथा आधुनिक तकनीक के प्रति उनकी सहज दक्षता के माध्यम से इस कार्य को नई ऊर्जा और उत्साह के साथ आगे बढ़ाया जा सकेगा। इस प्रकार का सहयोग न केवल संप्रदाय की शिक्षाओं एवं परंपराओं के संरक्षण में सहायक होगा, बल्कि उन्हें अधिक व्यापक और नई पीढ़ी के पाठकों एवं साधकों तक पहुँचाने का भी प्रभावी माध्यम बनेगा।

ह भी अनुभव किया गया कि इस माध्यम से परंपरा की समृद्ध आध्यात्मिक धरोहर, संतों की शिक्षाएँ तथा उसके इतिहास से संबंधित बहुमूल्य जानकारी ऐसे अनेक जिज्ञासुओं तक पहुँचाई जा सकेगी, जो अन्यथा उनसे अपरिचित रह जाते। इन्हीं विचारों और उद्देश्यों से प्रेरित होकर 'निसर्गवाणी डिजिटल त्रैमासिक' की परिकल्पना धीरे-धीरे आकार ग्रहण करती गई और अंततः साकार रूप में अस्तित्व में आई।

गुरुवार, 10 जुलाई 2025 को गुरु पूर्णिमा के पावन अवसर पर सायं 5:00 बजे से 6:00 बजे तक आयोजित एक विशेष ऑडियो-विजुअल प्रस्तुति समारोह के माध्यम से '**निसर्गवाणी डिजिटल त्रैमासिक**' के प्रथम अंक का विधिवत् लोकार्पण किया गया।

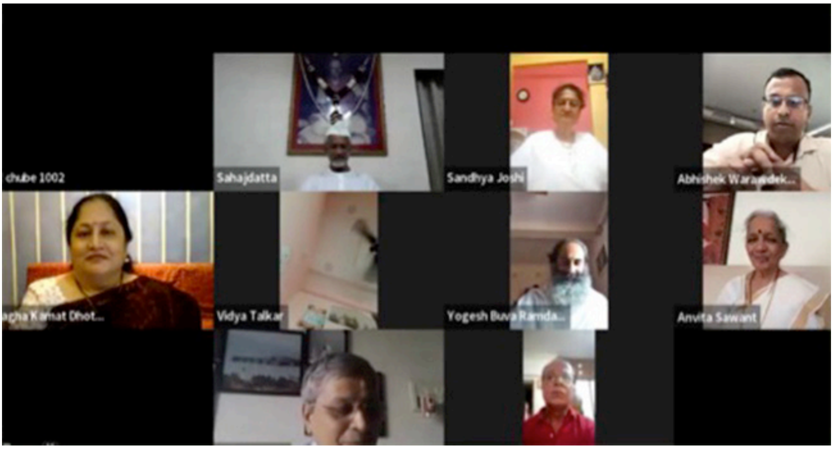

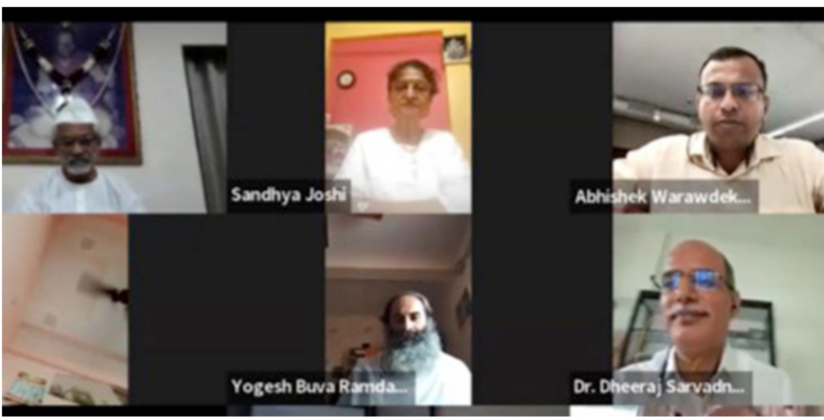

इस लोकार्पण समारोह की शोभा दो विशिष्ट अतिथियों की आभासी (वर्चुअल) उपस्थिति से और भी बढ़ गई। इस अवसर के मुख्य अतिथि सज्जनगढ़ स्थित **समर्थ सेवा मंडल** के मानद सचिव एवं पूज्य समर्थभक्त **पूज्य श्री योगेशबुवा रामदासी** थे। श्रव्य-दृश्य (ऑडियो-विजुअल) माध्यम से सद्गुरु श्री निसर्गदत्त महाराज के प्रत्यक्ष शिष्य सद्गुरु **श्री सहजदत्त महाराज** भी समारोह में उपस्थित रहे। इस अवसर पर मुख्य वक्तव्य दर्शनशास्त्र विषय में शोध कर डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त **डॉ. संध्याताई जोशी** द्वारा प्रस्तुत किया गया। उनके गहन एवं विचारोत्तेजक उद्बोधन ने इस समारोह को विशेष गरिमा एवं आध्यात्मिक गहराई प्रदान की तथा **'निसर्गवाणी डिजिटल त्रैमासिक'** के प्रथम अंक के लोकार्पण को और अधिक सार्थक एवं स्मरणीय बना दिया।

प्रथम अंक के सम्पादकीय में कहा गया है कि श्री निसर्गदत्त महाराज के वचन प्राचीन उपनिषद्कालीन भारतीय ऋषियों की दिव्य वाणी की प्रतिध्वनि से कम नहीं हैं। श्री निसर्गदत्त महाराज वास्तव में एक सच्चे **'वेदान्त केसरी'** हैं, जिनका सत्य का सिंहनाद आज भी विश्वभर के जिज्ञासुओं और साधकों को जागृत कर रहा है। उनकी शिक्षाओं के प्रभाव से माया-जनित अज्ञान का आवरण असंख्य मुमुक्षुओं और सत्य के अन्वेषियों के अंतःकरण से हट रहा है तथा उनके वचन उन्हें अपने दिव्य, शाश्वत और स्वाभाविक स्वरूप की पहचान कराने का मार्ग प्रशस्त कर रहे हैं। **'निसर्गवाणी'** के माध्यम से हमारी हार्दिक अभिलाषा है कि महाराज तथा महान ऋषि-मुनियों के इस अमृतमय, सनातन ज्ञान को विश्वभर के आध्यात्मिक साधकों, जिज्ञासुओं और सत्यप्रेमियों तक निरंतर पहुँचाया जाए, ताकि यह अमृततुल्य ज्ञान सदैव उनके लिए सहज रूप से उपलब्ध रहे।

भारत-वह पुण्यभूमि है जिसने सम्पूर्ण विश्व को **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का आदर्श प्रदान किया है-अनादिकाल से असंख्य विख्यात एवं अप्रसिद्ध अवतारों, ऋषियों, संतों तथा आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों की अवतरण-भूमि रही है और आज भी है। **'निसर्गवाणी'** का विनम्र प्रयास है कि भारत के ऐसे सभी ज्ञात एवं अज्ञात सद्गुरुओं और महापुरुषों द्वारा प्रतिपादित प्राचीन, शाश्वत एवं सार्वकालिक वेदान्त ज्ञान को साधकों, जिज्ञासुओं और सत्यप्रेमियों के समक्ष प्रस्तुत किया जाए।

पत्रिका के प्रथम वर्ष के दौरान अनेक लेखकों एवं सहयोगियों ने अपना बहुमूल्य समय समर्पित कर उत्कृष्ट लेखों का योगदान देकर **श्री निसर्गदत्त समाधि ट्रस्ट** को अमूल्य सहयोग प्रदान किया। इस अवसर पर उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करना तथा उनके योगदान का विनम्रतापूर्वक स्मरण करना हमारा कर्तव्य है।

इटली के साधक **एंतोनियो प्लाना** ने श्री निसर्गदत्त महाराज से संबंधित अनेक ऐसे अमूल्य संस्मरण पत्रिका के लिए उपलब्ध कराए, जो महाराज के अनेक शिष्यों के लिए भी अब तक अपरिचित थे। एक अन्य विदेशी सहयोगी **एल्किन मेंग्यूसओलु (Elkin Mengüsoğlu)** हैं, जो लंदन में अध्ययनरत एक लेखक हैं और जिन्होंने भी पत्रिका के लिए अपना महत्त्वपूर्ण योगदान प्रदान किया।

हम नागपुर के श्री प्रमोद पारखी; पुणे के शिरूर स्थित चाँदमल ताराचंद बोरा महाविद्यालय के सेवानिवृत्त प्राध्यापक प्रो. बालकृष्ण ललित; कोल्हापुर के डॉ. सुधीर फड़के; पुणे की श्रीमती अनुराधा म्हाळे; समर्थ गणपतराव महाराज कन्नूर के शिष्य श्री अनंत कुलकर्णी; श्री मयूर यादव; ठाणे की श्रीमती शामल यादव; समर्थ साहित्य पर

पीएच.डी. उपाधि प्राप्त नवी मुंबई की डॉ. रसिका ताम्हणकर; मुंबई के श्री साटम; डॉ. संध्या जोशी; भारतीय रिज़र्व बैंक के वरिष्ठ अधिकारी डॉ. आशुतोष रारावीकर; श्री शांतिदास (बाबाजी सावंत); श्री गजानन नेत्रावली तथा श्रीमती हेमलता कोलारकर के प्रति भी हृदय से कृतज्ञ हैं, जिन्होंने पत्रिका के लिए अपने बहुमूल्य लेखों एवं योगदानों से इसे समृद्ध बनाया।

अब तक प्रकाशित **'निसर्गवाणी'** के प्रत्येक अंक के आकर्षक एवं कलात्मक आवरण (मुखपृष्ठ) अत्यंत अल्प समय में तथा निष्काम सेवा-भाव से सद्गुरु के अनन्य भक्त **श्री भरतभाई शिंपी** (जलगाँव) द्वारा तैयार किए गए हैं। इस महत्त्वपूर्ण कार्य में उनका योगदान वास्तव में अमूल्य रहा है।

अंत में, मुंबई स्थित **ज़ेन पब्लिकेशन्स** के प्रेरणास्रोत **श्री योगेशजी शर्मा** का विशेष उल्लेख करना आवश्यक है, जिनका महाराज के साहित्य के प्रति गहरा प्रेम सर्वविदित है। उन्होंने पूर्णतः स्वेच्छा और सेवा-भाव से पत्रिका के आकर्षक लेआउट (विन्यास), रूप-सज्जा तथा आंतरिक प्रस्तुतीकरण का महत्त्वपूर्ण दायित्व अपने ऊपर लिया है। उनके इस निःस्वार्थ सहयोग ने **'निसर्गवाणी'** को प्रभावशाली, सुरुचिपूर्ण और पाठकों के लिए अधिक आकर्षक बनाने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस अवसर पर मैं **'निसर्गवाणी'** के सम्पादकीय मंडल के सभी सदस्यों को हार्दिक बधाई एवं अपनी सच्ची कृतज्ञता प्रकट करती हूँ। उनके सहयोग, समर्पण और सतत प्रयासों के कारण ही इस चुनौतीपूर्ण कार्य का शुभारम्भ करना तथा इसे निरंतर आगे बढ़ाना संभव हो सका है। साथ ही, मैं अपने सभी शुभचिंतकों एवं सहयोगियों के प्रति भी हृदय की गहराइयों से आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके अमूल्य सहयोग से यह कार्य निरंतर प्रगति कर रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि आने वाले वर्षों में भी **'निसर्गवाणी'** की इस ज्ञान-यात्रा में उनका यही स्नेह, प्रोत्साहन और सहयोग निरंतर प्राप्त होता रहे।

– श्रीमती अनघा धोत्रे-कामत
अध्यक्षा
श्री निसर्गदत्त समाधि चैरिटेबल ट्रस्ट, मुंबई
10 जुलाई 2026

पॉल वर्विश और श्री निसर्गदत्त महाराज

जब पश्चिमी बुद्धिवाद में पला-बढ़ा एक जिज्ञासु व्यक्ति, बीसवीं सदी के उत्तरार्ध के इस अशांत काल में भारत में अद्वैत वेदांत की शुद्ध परंपरा का प्रतिनिधित्व करने वाले एक सद्गुरु से मिलता है तब क्या होता है? फ्रांसीसी अभिनेता और पत्रकार पॉल वर्विश ने समकालीन युग के महान संतों में से एक, श्री निसर्गदत्त महाराज के साथ अपने अविस्मरणीय प्रत्यक्ष अनुभव को याद किया...

श्री निसर्गदत्त महाराज का नाम मैंने पहली बार इंग्लैंड में डगलस हार्डिंग के घर पर रहने के दौरान सुना था। इस बात से आश्चर्यचकित होकर कि मैं उसके बारे में कुछ नहीं जानता, डगलस ने 'आई एम दैट' पुस्तक मेरे हाथ में दे दी। इस पुस्तक को पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ। इसके संवादों की सरलता और गहनता ने मेरे भीतर एक असाधारण कंपन जगाया और साथ ही एक असामान्य शांति का अनुभव किया। फ्रांस लौटने के बाद, मैंने इस पुस्तक की एक प्रति प्राप्त की और इसे प्रतिदिन पढ़ना शुरू किया। अक्सर मैं एक भी पेज पढ़े बिना काफी देर तक एक ही जगह रुक जाता था; यह मेरे लिए आध्यात्मिक पोषण की तरह था। छह महीने बाद, मैंने उस महान व्यक्ति से मिलने का फैसला किया, जिसने अनजाने में मेरे दैनिक जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान ले लिया था। उन्हें गले का कैंसर था और उनकी हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती जा रही थी। इसलिए मुझे संदेह था कि क्या मैं उनसे व्यक्तिगत रूप से मिलने के लिए पर्याप्त भाग्यशाली हो पाऊंगा।

[...] मैं इतनी महत्वपूर्ण नियुक्ति के लिए समय पर न पहुंच पाने के अफसोस

और जिज्ञासा से भरे एक कम ऊँचा छत वाले कमरे में दाखिल हुआ। वहाँ लगभग पन्द्रह लोग कालीन पर बैठे महाराज का भाषण ध्यान से सुन रहे थे। महाराज का शरीर छोटा और पतला था। उनका वर्ण भी फीका लग रहा था. उनके हाव-भाव में जीवंतता और सहजता थी. परंतु उनके व्यक्तित्व में अद्भुत वैभव और असाधारण आकर्षण था। आज भी मुझे वह सब ठीक वैसा ही याद है जैसा वह था। लेकिन उस वक्त मुझे उनकी नजरों के अलावा कुछ भी होश नहीं था. एक रहस्यमय, अविस्मरणीय रूप जो उन दीवारों को भी भेद देता है। जब वह नजर मुझ पर पड़ी तो रोजमर्रा की जिंदगी की सारी छायाएं पिघलती नजर आईं। मैं पूरी तरह निहत्था था, बेनकाब था। जैसा किसी के लिए भी अकल्पनीय अनुभव!

मैं परस्पर विरोधी भावनाओं से परेशान होकर बैठ गया था; उस समय अनुवादक ने बोलना समाप्त कर दिया। महाराज ने मेरी ओर इशारा किया और पूछने लगे: मैं कहाँ से आया हूँ? मैं यहां क्यों हूं? और मुझे क्या लगता है कि मैं कौन हूं?

मैं वहां उनसे प्रश्न पूछने आया था, लेकिन महाराज ने स्वयं ही उलटा प्रश्न पूछकर मेरे मन में प्रश्नों की जो रूपरेखा तैयार की थी, उसे तुरंत किनारे कर दिया। उस क्षण की तीव्रता से अभिभूत होकर, मैंने अपने हृदय से उत्तर दिया। मुझे आज इस बातचीत का केवल एक छोटा सा हिस्सा याद है, लेकिन उस बातचीत का अंत हमेशा के लिए मेरी स्मृति में अंकित हो गया है।

जब महाराज ने मुझसे पूछा कि क्या मैंने पहले कभी उनकी कठोर बातें सुनी हैं; तो मैंने कहा, 'बेशक, हर दिन!' उन्होंने कहा, 'बहुत अच्छा, तो हम साथ मिलकर काम कर सकते हैं। लेकिन ये सभी शब्द जो मैंने उपयोग किए हैं - जिन्हें आप समझने की कोशिश कर रहे हैं - इनका आपके वास्तविक स्वरूप से कोई लेना-देना नहीं है। आपकी मूल प्रकृति (सच्चा अस्तित्व) उन सभी अवधारणाओं से अधिक निकट है जिनसे वे उत्पन्न होती हैं।

सद्गुरु के साथ मेरी मुलाकात उस एक बातचीत तक ही सीमित होती, फिर भी जो सबसे महत्वपूर्ण और आवश्यक (सार) था वह मुझे पहले ही मिल चुका था।

महाराज के उत्तरों की सहजता असाधारण थी। जैसे ही प्रश्नों का मराठी में अनुवाद किया गया, उनके उत्तर तुरंत मिलने लगे; इतना ही नहीं, बल्कि अक्सर वे अनुवादक को अपना वाक्य पूरा करने से पहले ही रोक देते थे। इस चौंका देने वाली सहजता से हम सभी स्पष्ट रूप से महसूस कर सकते थे कि उनके शब्द बौद्धिक विमर्श के स्तर से नहीं, बल्कि किसी अलग स्रोत से निकल रहे थे। एक गरीब परिवार में

पला-बढ़ा, पहले से किसान परिवार में पैदा हुआ और औपचारिक शिक्षा से वंचित ("मैं लगभग अनपढ़ हूं," उन्होंने कहा) - यह साधारण व्यक्ति सबसे सूक्ष्म और गहन दार्शनिक विषयों पर विभिन्न संस्कृतियों और स्वभावों के आगंतुकों के साथ आसानी से संवाद कर सकता था।

[...] हमारी बातचीत अक्सर हंसी से भरी होती थी। महाराज का मजाकीया स्वभाव बहुत तीव्र था। यदि अनुवादक ने इस झिझक के कारण कि कोई सौम्य शब्द का प्रयोग किया होता तो महाराज ने उसे नहीं बख्शा होता। महाराज के लिए कैंसर कभी भी वर्जित विषय नहीं था। वह अपने शरीर की टूट-फूट और शारीरिक दर्द के बारे में ऐसे अनासक्त भाव से बात करते थे मानो वह मौसम के बारे में चर्चा कर रहे हो (वह कोई दवा नहीं ले रहे थे)। इस आदमी के चरणों में मुझे जो अनुभव हुआ उसका वर्णन करना असंभव है। मैं बस इतना कह सकता हूं कि वहां मेरे सारे डर दूर हो गए थे, मैं एक अथाह आंतरिक स्वतंत्रता और प्रेम के अलावा कुछ भी नहीं की स्थिति का अनुभव कर रहा था।

"आप अभी भी शरीर-मन के स्तर पर अटके हुए हैं; एक ऐसा स्तर जो केवल बाहरी रूपों और आकृतियों को बनाए रखना चाहता है। उनके साथ संघर्ष न करें, बल्कि सीधे उनके मूल स्रोत पर जाएं!"

महाराज मेरे सभी प्रश्नों का उत्तर देते थे; लेकिन उनका ज़ोर हमेशा एक चीज़ पर था - वह स्वाभाविक 'अस्तित्व', जो कि अनुभव की जा सकने वाली हर चीज़ का आधार है। एक सुबह उन्होंने मुझसे पूछा, "आप काफी समय से यहां आ रहे हैं। मुझे बताएं, ऐसी कौन सी चीज है जिसे आपने संग्रहित नहीं किया है?" इस अत्यंत सूक्ष्म प्रश्न के माध्यम से, महाराज एक बार फिर मेरे दिमाग के उस निरंतर कार्यशील स्तर की ओर इशारा कर रहे थे जिसे मुझे पार करना था। इस प्रश्न ने, अपनी सरलता के कारण, मुझे अंदर तक झकझोर कर रख दिया।

जल्द ही ऐसा हुआ कि मेरे मन में सवाल तो उठे, लेकिन उनका खोखलापन मेरे सामने स्पष्ट हो गया। यह एक बेकार यंत्र का निर्माण प्रतीत होता था, जिसके घूमते हुए दांत (पहिए) मैं स्पष्ट रूप से देख सकता था। मैंने महाराज को इस बारे में बताया; लेकिन उन्होंने इसे इस तरह नहीं देखा. मुझे और गहराई में उतरना था - विरोधाभासों, सूक्ष्म संदेहों और शेष छायाओं को ढूंढना और उन्हें प्रकाश में लाना। मैंने इसके लिए प्रयास करना शुरू कर दिया; लेकिन महाराज और अधिक सख्त हो गये। "यह सब पहले ही कहा जा चुका है; इसलिए आप अभी तक कुछ भी नहीं समझ पाए हैं! ये प्रश्न

बहुत प्राथमिक हैं। दैहिक मन को त्यागें। सब कुछ 'मैं हूं' चेतना से शुरू होता है। यह एक उपस्थिति है, स्मृति नहीं; इसका न तो आकार है और न ही गंध। अभी भी उसमें ही स्थित रहो और फिर अपना प्रश्न पूछो!"

महाराज हृदय शुद्धि की इस प्रक्रिया को जारी रखना चाहते थे; लेकिन मेरे पास पूछने के लिए कोई सवाल नहीं बचा था. तो उन्होंने मेरा मज़ाक उड़ाना शुरू कर दिया. हजारों किलोमीटर की यात्रा करके, उस गर्म और सीलन भरे कमरे में फर्श पर बैठकर, एक भी प्रश्न न पूछते हुए कि हम किस उद्देश्य से आए थे - इससे अधिक हास्यास्पद क्या हो सकता है? आख़िरकार, एक शाम उन्होंने सीधी चेतावनी दी: "कल बिल्कुल थिएटर जैसा होगा। आपका प्रश्न ही आपका टिकट होगा। यदि कोई प्रश्न नहीं है, तो कोई चर्चा नहीं है, और आपको बाहर इंतजार करना होगा!" वह रात मेरे लिए बहुत परेशान करने वाली थी. अगली सुबह जब मैं महाराज के घर पहुँचा तो मेरे मन में एक भी प्रश्न नहीं उठा था। जैसा कि महाराज ने पूछा, मैंने मासूमियत से उत्तर दिया, "कौन सा प्रश्न मेरे लिए सबसे उपयोगी होगा?" यह सुनकर महाराज खिलखिलाकर हँसे और बिना किसी शर्त के मुझे वहाँ बैठने की अनुमति दे दी।

महाराज ने बहुत दृढ़ता से कहा: "यदि आप मेरे शब्दों को पूरी तरह से आत्मसात कर लेंगे, तो वे पहले आपकी सभी अवधारणाओं को भंग कर देंगे और अंत में स्वयं गायब हो जाएंगे। आप अपने पैर में अज्ञानता का कांटा चुभने के कारण लंगड़ा रहे हैं। मैं आपको उस कांटे को निकालने के लिए एक सुई देता हूं। लेकिन अगर आप कांटा निकल जाने के बाद भी सुई को अपने पास रखते हैं, तो यह आपके लिए किस काम की है?" या वे कहते हैं: "मेरे शब्द साबुन की तरह हैं। वे ज्ञान की उन परतों को धोने में मदद करते हैं जो आपकी आत्मा पर दाग लगाती हैं। एक बार जब वे परतें घुल जाएँ, तो भगवान के लिए, अपने आप को धोकर साफ़ कर लें! यदि आप अपने शरीर को साबुन से रगड़ते रहेंगे, तो आप पहले से भी अधिक गंदे हो जाएँगे!"

नवंबर के मध्य में महाराज ने मुझे वापस जाने के लिए कहा। मैंने वह सब कुछ किया था जिसे हासिल करना मेरी शक्ति में था; अब घर लौटने का समय हो गया था. पिछले कुछ दिनों से वे अन्य आगंतुकों को भी अलविदा कह रहे थे। उन्होंने बहुत कमज़ोर महसूस करने की शिकायत की, फिर भी कुछ सवालों के जवाब अभी भी उनसे सबसे आश्चर्यजनक, समृद्ध और स्पष्ट उत्तर मिले। उन्होंने कहा, "मैं अब केवल चेतना की एक बहुत ही पतली, धुंधली किरण के माध्यम से इस प्रकट दुनिया से जुड़ा हुआ हूं।" और आगे चेतावनी देते हुए कहा, "अब ये जवाब और भी मजबूत हो गए

हैं. सावधान रहें... मेरे शब्द तुम्हारे भीतर सब कुछ घोल देंगे, कुछ भी नहीं बचेगा!"

फिर मैं फ्रांस लौट आया. महाराज के शब्द मेरे लिए जीवन आधार बन गये। उन्होंने मुझसे कहा, "मुझे यकीन है कि मैंने जो कहा है उसे आप पूरी तरह से समझ गए हैं। अब केवल एक ही बाधा है - शरीर के प्रति आपका लगाव (देहबुद्धी) और आपका दृढ़ विश्वास कि एक दिन आप मर जाएंगे! अपने शरीर और भौतिक चीजों के लिए अपने प्यार को कम करें। आप वास्तव में जो हैं उसे प्रेम की ज़रूरत नहीं है; क्योंकि आप स्वयं प्रेम हैं!"

इसके ठीक दस महीने बाद 8 सितम्बर 1981 को महाराज का महानिर्वाण हुआ। इन सभी स्मृतियों को याद करने और इतने सारे शब्द लिखने के बाद, अंततः मैं महाराज का एक उद्धरण उद्धृत करना चाहूँगा। यह हर चीज़ को उसके उचित स्थान पर रखता है: "इन शब्दों को बार-बार सुनने की बहुत आवश्यकता है। लेकिन उन्हें इकट्ठा मत करो, उन्हें संग्रहित मत करो। उनके प्रभाव को अपने अंदर डूबने दो और फिर उन्हें जाने दो।"

– अनुवाद: एंटोनियो प्लाना

(मूल स्रोत अज्ञात है। यह अनुवाद स्पेन में प्रकाशित पत्रिका *टेरसर मिलेनियो* के तीसरे अंक पर आधारित है। यह संभवतः 1985 के आसपास फ्रांस में प्रकाशित फ्रांसीसी पत्रिका *ट्रोइसिएम मिलेनेयर* के एक लेख का रूपांतरण है।)

स्वयं का ज्ञान सभी ज्ञान की जननी है। इसलिए यह मेरा कर्तव्य है
कि मैं अपने आप को जानूं, इसे पूरी तरह से जानूं,
इसकी बारीकियों, इसकी विशेषताओं, इसकी
सूक्ष्मताओं और इसके परमाणुओं को जानूं।

– खलील जिब्रान

सत् चित् आनंद

हमारे शास्त्र और संत बताते हैं कि हमारा स्वरूप (वास्तविक प्रकृति) सत्–चित्–आनंद है, अर्थात् अस्तित्व–चेतना–आनंद। इन शब्दों का वास्तव में क्या अर्थ है? क्या ये हमारे दैनिक जीवन के अनुभव का हिस्सा हैं? क्या आप सरल शब्दों में समझा सकते हैं कि इनका क्या आशय है?

हाँ, यह बिल्कुल सरल है। आइए पहले पहलू पर विचार करें- सत् अर्थात् अस्तित्व।

आइए कुछ प्रश्नों के उत्तर देकर शुरुआत करें।

क्या आप जीवित हैं?

"निश्चित रूप से! हाँ!"

क्या आपको पूर्णतः निश्चित है कि आप जीवित हैं, या इसमें कोई संदेह है? जब आप सुबह उठते हैं, तो क्या आपके मन में यह विचार आता है कि 'चलो, किसी से पूछूँ कि मैं जीवित हूँ या नहीं?'

"मुझे बिल्कुल भी संदेह नहीं है कि मैं जीवित हूँ।"

क्या आपका अस्तित्व है?

"हाँ।"

अर्थात्, यदि आप जीवित हैं, तो आपका अस्तित्व है। यही सत् या अस्तित्व है। यह पूर्णतः स्वतःसिद्ध है। इसके लिए हमें कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं होती।

अब आइए अगले पहलू पर विचार करें – चित् अर्थात् चेतना।

जब आप यहाँ बैठे हैं, तो क्या आपको अपने आसपास की वस्तुओं और वातावरण का ज्ञान है?

"हाँ।"

आपको अपने आसपास की चीज़ों का ज्ञान किसके कारण है? क्या यह चेतना या जागरूकता के कारण नहीं है?

"हाँ।"

यही जानने की शक्ति (जानने की अनुभूति) चित् या चेतना/जागरूकता है।

यह चेतना भी स्वतःस्फूर्त है। इसके लिए भी हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती।

सत् (अस्तित्व) और चित् (चेतना) एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। आप यह नहीं कह सकते कि, "मैं जीवित हूँ, मेरा अस्तित्व है, पर मैं चेतन नहीं हूँ।" और न ही यह कह सकते हैं कि, "मैं चेतन हूँ, पर मैं जीवित नहीं हूँ।" यदि आप जीवित हैं, तो आप अवश्य ही चेतन हैं; और यदि आप चेतन हैं, तो आप अवश्य ही जीवित हैं। दोनों सदैव साथ-साथ रहते हैं। अब प्रश्न उठ सकता है कि गहरी नींद (सुषुप्ति) में तो हम चेतन या जागरूक नहीं होते।

जाग्रत अवस्था में हम जीवित (सत्) भी होते हैं और अपने इन्द्रियों के माध्यम से अपने चारों ओर के संसार (जिसमें हमारा शरीर और मन भी सम्मिलित हैं) के प्रति चेतन एवं जागरूक (चित्) भी होते हैं।

स्वप्न अवस्था में हम अपने मन और स्मृति के माध्यम से स्वप्न-जगत के प्रति जागरूक रहते हैं।

गहरी नींद (सुषुप्ति) में शरीर और मन की कार्यप्रणाली विश्राम के लिए शांत हो जाती है। इसलिए व्यवहारिक दृष्टि से हमारी इन्द्रियाँ कार्य नहीं करतीं और हमें ऐसा प्रतीत होता है कि हम चेतन या जागरूक नहीं हैं। फिर भी, हमें अपने अस्तित्व या जीवित होने का अनुभव बना रहता है। जब हम गहरी नींद से जागते हैं, तो अपने आपको ताज़गी और विश्राम से भरपूर अनुभव करते हैं। हमें कभी ऐसा नहीं लगता कि गहरी नींद के दौरान हमारा अस्तित्व ही नहीं था। जैसा कि पहले बताया गया है, सत् (अस्तित्व) और चित् (चेतना) सदैव साथ-साथ रहते हैं। इसलिए गहरी नींद में यदि अस्तित्व बना रहता है, तो इसका अर्थ यही है कि वहाँ चेतना भी विद्यमान थी।

अब आइए अपने स्वरूप के तीसरे पक्ष पर विचार करें – आनंद।

आनंद, सुख नहीं है। सुख एक भावना (Emotion) है और उसका संबंध शरीर और मन से है। सुख का एक विपरीत भी है- दुःख या उदासी। जब मुझे कोई वस्तु या परिस्थिति चाहिए होती है और वह मिल जाती है, तो मैं सुख का अनुभव करता

हूँ। यदि वह नहीं मिलती, तो मुझे दुःख का अनुभव होता है। ये दोनों भावनाएँ मन से संबंधित हैं। ध्यानपूर्वक देखें कि सुख और दुःख दोनों ही हमारी सीमितता की भावना से उत्पन्न होते हैं। जब मुझे लगता है कि मुझमें किसी चीज़ का अभाव है, मैं अधूरा हूँ, तब दुःख होता है। और जब वह वस्तु या परिस्थिति प्राप्त हो जाती है जिसकी मुझे चाह थी, तब सुख का अनुभव होता है।

परंतु आनंद कोई भावना नहीं है। वह अकारण (बिना किसी कारण के) है और किसी बाहरी वस्तु, व्यक्ति या परिस्थिति पर निर्भर नहीं करता। हमने देखा कि हमारा स्वरूप या वास्तविक प्रकृति चैतन्य है, जो आकाश के समान निर्मल, अनंत और असीम है। आकाश अनंत है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसी में स्थित है। वह स्वयं में पूर्ण है और किसी भी वस्तु से प्रभावित नहीं होता। उसी प्रकार चैतन्य, जो हमारा वास्तविक स्वरूप है, शुद्ध, अनंत और पूर्ण है।

यही पूर्णता का अनुभव ही आनंद है। गहरी नींद (सुषुप्ति) में, जहाँ न शरीर का अनुभव रहता है, न मन का, और न ही संसार का, वहाँ हम इसी आनंद का अनुभव करते हैं। यही कारण है कि हम गहरी और विश्रामदायक नींद की कामना करते हैं, क्योंकि उसमें हम अपने वास्तविक स्वरूप की पूर्णता का स्पर्श करते हैं। यह पूर्णता भी स्वतःस्फूर्त है। इसके लिए भी हमें कुछ करने की आवश्यकता नहीं होती।

जय गुरु!

– गजोबा

कर्म मानव स्वतंत्रता का शाश्वत दावा है। ...
हमारे विचार, हमारे शब्द और कर्म उस जाल के धागे हैं जो
हम अपने चारों ओर फेंकते हैं।

– स्वामी विवेकानंद

भगवद्गीता की शिक्षाएँ और श्री निसर्गदत्त महाराज का 'आई ऐम दैट'

कुछ वर्ष पूर्व मुझे आचार्य विनोबा भावे की पुस्तक 'गीता प्रवचने' पढ़ने का अवसर मिला। मैंने उसे अत्यंत ध्यान और शांत मन से पढ़ा, क्योंकि लंबे समय से मेरी यह इच्छा थी कि जीवन में कम-से-कम एक बार श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन अवश्य करूँ। एक कारण यह भी था कि यह पुस्तक मराठी भाषा में थी, जिसे मैं सहजता से पढ़ सकता था। हमारे घर में श्रीमद्भगवद्गीता की एक प्रति पहले से ही थी, किंतु वह हिन्दी में होने के कारण मेरा अध्ययन केवल उसके कुछ पृष्ठों को सरसरी निगाह से देखने तक ही सीमित रह गया था। विनोबाजी की इस पुस्तक ने मुझे पहली बार श्रीमद्भगवद्गीता से वास्तविक परिचय कराया। यद्यपि उस समय तक गीता के साथ मेरा संबंध केवल प्रारम्भिक समझ तक ही सीमित था। उसके गूढ़ अर्थ, आंतरिक रहस्य और वास्तविक तात्पर्य का उद्घाटन अभी मेरे सामने होना शेष था।

निसर्गदत्त आश्रम में, श्री निसर्गदत्त महाराज प्रायः श्रीदासबोध, एकनाथी भागवत तथा सदाचार जैसे पवित्र आध्यात्मिक ग्रंथों के पदों पर प्रवचन दिया करते थे। इन प्रवचनों के दौरान वे समय-समय पर श्रीमद्भगवद्गीता तथा भगवान श्रीकृष्ण और अर्जुन के मध्य हुए ज्ञानयोग के संवाद का भी उल्लेख करते थे। उन अवसरों पर मैं अपनी समझ के अनुसार उनके वचनों को यथासंभव ध्यानपूर्वक लिख लेने का प्रयास करता था।

भगवान श्रीकृष्ण तथा श्रीमद्भगवद्गीता के महत्त्व का विवेचन करते हुए महाराज कहा करते थे:

गीता क्या सिखाती है? वह केवल एक ही बात सिखाती है—कि गीता का अध्ययन करने वाला स्वयं शुद्धब्रह्म है। यदि तुम श्रद्धा और निष्ठा के साथ श्रीमद्भगवद्गीता का अध्ययन करोगे, तो यह सत्य तुम्हारे लिए पूर्णतः स्पष्ट हो जाएगा। दूध किसके लिए उत्पन्न होता है? बछड़े के लिए। परन्तु उसी बछड़े को डंडे से दूर हटा दिया जाता है और दूध का उपभोग दूसरे लोग करते हैं। ठीक इसी प्रकार भगवान ने जो ज्ञान उद्धव को प्रदान किया था, वही अंततः समस्त मानवजाति के कल्याण का साधन बन गया।

फिर भी, महाराज से श्रीमद्भगवद्गीता की महिमा और उसके गहन आध्यात्मिक महत्त्व के विषय में बार-बार सुनने के बावजूद, मेरी यह अभिलाषा कभी पूरी न हो सकी - कि मैं गीता का सम्पूर्ण अध्ययन करूँ अथवा किसी योग्य ज्ञानी गुरु के मार्गदर्शन में उसका मनन कर सकूँ। किसी-न-किसी कारणवश यह आकांक्षा अनेक वर्षों तक अपूर्ण ही बनी रही।

19 मार्च 2026 को, प्रातःकाल, गुड़ी पड़वा के पावन पर्व पर एक अद्भुत संयोग घटित हुआ। संयोगवश मुझे ठाणे के विद्वान लेखक श्री प्रभात गोपाल जोशी द्वारा लिखित पुस्तक **'मला उमजलेली भगवद्गीता'** (जैसा मैंने भगवद्गीता को समझा) की एक प्रति प्राप्त हुई। श्री जोशी ने गीता धर्म मंडल, पुणे तथा तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ द्वारा आयोजित 'भगवद्गीता रहस्य' की उपाधि परीक्षा की तैयारी के दौरान भगवद्गीता का अत्यंत गहन अध्ययन किया था। इसी व्यापक अध्ययन से भगवद्गीता के संबंध में उनकी जो आत्मानुभूत समझ विकसित हुई, वही आगे चलकर इस पुस्तक के रूप में अभिव्यक्त हुई। मैंने इस पुस्तक को आरंभ से अंत तक पूरे मनोयोग के साथ पढ़ा। पुस्तक के अंत में दी गई संदर्भ-ग्रंथ सूची पर दृष्टि डालते समय मेरी नज़र **'आई एम दैट (I Am That) - श्री निसर्गदत्त महाराज'** पर पड़ी। यह देखकर मेरे हृदय में अपार प्रसन्नता प्रकट हुयी ।

महाराज के प्रवचन के उपर्युक्त वचन मुझे याद आई। संयोगवश, उसी समय मैं **'निसर्गवाणी'** के आगामी अंक के लिए किसी नए विषय पर लेख लिखने का विचार कर रहा था। इस पुस्तक ने मुझे आवश्यक प्रेरणा प्रदान की कि मुझे उपर्युक्त विषय पर कुछ लिखना चाहिए, ताकि एक बार फिर संपूर्ण *श्रीमद्भगवद्गीता* का पुनरावलोकन कर सकूं – उसी प्रेरणा का परिणाम यह लघु लेख है।

महाराज अक्सर कहते थे कि सभी अवतारों में, श्री कृष्ण परम पूर्ण सत्य (पूर्ण

परब्रह्म) का साक्षात स्वरूप थे।

जिन ऋषियों को अपनी इच्छा से देहत्याग करने का वरदान प्राप्त था, और जिनकी आयु इतनी दीर्घ थी कि उनके सिर का एक बाल भी हजार वर्षों में केवल एक बार झड़ता था, वे भी श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए आते थे। इसका क्या अर्थ है? आयु की दृष्टि से श्रीकृष्ण तो उनके सामने एक युवक मात्र थे! फिर भी वे अतुलनीय तेजस्वी, जप-तप में निरंतर लीन, सहस्रों वर्षों तक साधना और तपस्या करने वाले महर्षि एवं ऋषिगण श्रीकृष्ण के प्रति अत्यंत श्रद्धा और आदर का भाव रखते थे। कल्पना कीजिए कि श्रीकृष्ण के ज्ञान की गहराई कितनी विलक्षण और अगाध रही होगी!

श्रीकृष्ण और *श्रीमद्भगवद्गीता* की महिमा का वर्णन करते हुए, श्री निसर्गदत्त महाराज अपनी विशिष्ट शैली में कहा करते थे:

श्रीकृष्ण स्वयं अपनी ही रची हुई एक अनुपम कृति हैं- गुणक्षोभ का सजीव चित्र! कृष्ण जैसा विरला ही कोई होता है, जो यह उद्घाटित करता है कि यह समस्त सृष्टि किस प्रकार अस्तित्व में आई।

कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, ध्यानयोग तथा सांख्ययोग का उपदेश दिया। उन्होंने अर्जुन को अपने विराट स्वरूप (विश्वरूप) का दर्शन कराया और यह परम सत्य प्रकट किया कि समस्त सृष्टि उन्हीं का स्वरूप है तथा जो कुछ भी है, वह सब उन्हीं में समाहित है। तब प्रश्न उठता है-ऐसे परम रहस्यों का उद्घाटन करने वाले श्रीकृष्ण वास्तव में कौन हैं? इस प्रश्न का उत्तर महाराज अपनी अत्यंत प्रभावशाली और विशिष्ट शैली में देते हैं – **"श्रीकृष्ण स्वयं अपनी ही रची हुई एक अनुपम कृति हैं- गुणक्षोभ द्वारा अंकित एक अद्वितीय चित्र।"**

इस कथन में जो पहला शब्द हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह है— 'गुणक्षोभ'। यह दो शब्दों—गुण और क्षोभ-से मिलकर बना एक संयुक्त पद है, जिसका प्रयोग महाराज ने अपनी विशिष्ट शैली के अनुरूप अत्यंत सटीकता और गहन अर्थ के साथ किया है।

महाराज के '*आई एम दैट*' में निहित विवेचन की ओर बढ़ने से पहले, इन दोनों शब्दों के अर्थ पर संक्षेप में विचार करना उपयोगी होगा। ऐसा करने से महाराज द्वारा श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त इस गूढ़ वचन – "गुणक्षोभ से निर्मित स्वयं अपनी ही रची हुई एक अनुपम कृति"– में निहित गहन आध्यात्मिक अर्थ को अधिक स्पष्ट रूप से

समझने में सहायता मिलेगी।

'गुण' शब्द का सामान्य अर्थ है—किसी वस्तु का स्वाभाविक धर्म, उसकी अंतर्निहित विशेषता अथवा उसका मौलिक स्वरूप। जैसे चीनी का मीठापन, इमली की खटास और नमक का खारापन- ये सभी उनके-अपने गुण हैं; वही विशिष्ट विशेषताएँ जो उनके स्वभाव और पहचान को निर्धारित करती हैं।

इसी प्रकार, जो कुछ भी प्राणी आहार के रूप में ग्रहण करता है, वह पचकर पोषण में परिवर्तित होता है और अंततः उसका एक सूक्ष्म सार (सत्त्व-रस) उत्पन्न होता है। इसी सत्त्व-रस से एक अद्वितीय गुण प्रकट होता है- 'मैं हूँ' का बोध, अस्तित्व की अनुभूति, अथवा वह जागरूक उपस्थिति जिसे महाराज प्रायः *'जाणीव'* (जाननापन) या *'उपस्थिति की अनुभूति'* कहा करते थे। यही वह मूल चेतना है जो जन्म के साथ प्रकट होती है –'मैं हूँ' का सहज, निर्विवाद और प्रत्यक्ष अनुभव। इसी को विभिन्न नामों से पुकारा गया है। कोई इसे चैतन्य कहता है, कोई चेतना, तो कोई इसे हृदय में निरंतर प्रज्वलित रहने वाला अंतर्ज्योति या अंतरदीप कहकर संबोधित करता है। नाम चाहे जो भी हो, मूल सत्य एक ही है- सत्त्वगुण से पोषित प्रत्येक जीव में यह एक समान तत्व विद्यमान है, अर्थात् सचेत उपस्थिति का बोध। इस गुण का बने रहना तीन अनिवार्य आधारों पर निर्भर करता है- अन्न, जल और प्राणवायु (प्राण)। यदि इनमें से किसी एक का भी लंबे समय तक अभाव हो जाए, तो यह सचेत उपस्थिति धीरे-धीरे क्षीण होकर अंततः विलीन हो जाती है। इसी गुण के कारण यह जगत प्रकट होता है और उसका अनुभव संभव होता है। इसी के प्रकाश में समस्त अनुभूतियाँ उत्पन्न होती हैं और सम्पूर्ण विश्व ज्ञात होता है। जब यह गुण लुप्त हो जाता है, तब शरीर तो बना रहता है, परंतु केवल जड़ पदार्थ के रूप में – निष्प्राण, निश्चेष्ट और अनुभव-शून्य, मानो लकड़ी का एक टुकड़ा।

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियवर्वर्जितम् ।
असक्तं सर्विभृच्चैर्व निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥
(श्रीमद्भगवद्गीता, अध्याय 13, श्लोक 15)

'आई एम दैट' : "मैं कौन हूँ?" - यह प्रत्येक आध्यात्मिक साधक का मूल प्रश्न है। इस प्रश्न का महाराज का विस्तृत, गहन और प्रकाशमान उत्तर है - **"वह मैं हूँ।"**

वास्तव में यह समूची जिज्ञासा 'मैं' के स्वरूप को जानने की है। इस रहस्य को

स्पष्ट करते हुए महाराज सर्वप्रथम गुण की उत्पत्ति का विवेचन करते हैं। हम बोलते हैं, चलते हैं, खाते हैं, पीते हैं और प्रत्येक क्रिया में अपने लिए सहज ही 'मैं' शब्द का प्रयोग करते हैं। इसका अर्थ है कि हमारे भीतर 'होने' का बोध - अपने अस्तित्व की जागरूकता की अनुभूति-उदित हो चुकी है। दूसरे शब्दों में, 'मैं हूँ' का ज्ञान प्रकट हुआ है। महाराज के अनुसार यह 'मैं हूँ' की *जाणीव* (चेतना) सत्त्व से उत्पन्न होती है। यह सत्त्व में प्रकट हुआ एक गुण है - सत्त्व का ही एक विशिष्ट प्राकट्य, जिसके कारण 'मैं हूँ' का अनुभव संभव होता है।

परंतु यह सब अस्तित्व में आया कैसे? वास्तव में हुआ क्या? किसी क्षण यह 'होने' की अनुभूति प्रकट हुई और तभी 'मैं हूँ' का बोध उदित हुआ। तभी हम अंग्रेज़ी में कहने लगे—"I am, I am." और मराठी में-"मी... मी..."। अर्थात्, उसी क्षण 'मैं हूँ' की चेतना का उदय हुआ और अपने अस्तित्व का प्रत्यक्ष अनुभव प्रारम्भ हुआ।

इस विषय को और स्पष्ट करते हुए श्री निसर्गदत्त महाराज कहते हैं:

हम जो अन्न ग्रहण करते हैं, वही उस गुण का पोषण करता है जिसे सत्त्व कहते हैं। जहाँ सत्त्वगुण है, वहाँ 'तुम हो' की स्मृति भी है। जैसे पुष्प में सुगंध निहित होती है, उसी प्रकार इस शरीर में 'मैं हूँ' का ज्ञान विद्यमान है। यही सत्त्व का गुण है। उसी सत्त्व में जो शुद्धसत्त्व है, और उस शुद्ध सार का जो गुण है, वही हमें 'हम हैं' का अनुभव कराता है; उसी के कारण हमें इस जगत का भी बोध होता है। अन्न के सूक्ष्म सार में जो स्वाद (स्वादा) है, वही 'तुम हो' का अनुभव है। यही सत्त्वगुण है। और गुण का अर्थ है- वह जाननापन, जो इस समय यह सब सुन रही है।

मूलगुण का अनुभव भी सत्त्व के माध्यम से ही होता है। वही 'मैं हूँ' की चेतना के रूप में अनुभव किया जाता है। अन्न के बिना यह गुण टिक नहीं सकता। 'तुम हो' का ज्ञान उसी सत्त्व में 'स्वत्व' (स्वरूप, आत्मभाव) के रूप में विराजमान रहता है।

शुद्धसत्त्व का जो गुण है, वही हमें अपने 'होने' (Beingness) का अनुभव कराता है। इसी ज्ञान के प्रकाश में यह शरीर दिखाई देता है और उसके साथ-साथ यह समस्त संसार भी प्रकाशित होकर अनुभव में आता है।

गुण का अर्थ है- सबसे स्वाभाविक 'होने' (Beingness) की अनुभूति। वही तुम्हें 'तुम हो' का अनुभव कराता है। जब यह गुण प्रकाशित होता है,

तभी 'मैं हूँ' की ज्ञान प्रकट होती है। गुण का अर्थ है – अपने होने के प्रति जागरूक होना। इससे पहले तुम्हें अपने होने का कोई बोध नहीं था। इसी जागरूकता के कारण हमारे अस्तित्व की अनुभूति सुनिश्चित होती है। किसे गुण कहा जाए? वही ज्ञान, जो जन्म के साथ ही 'मैं हूँ' के रूप में प्रकट होता है। किन्तु तुम तो इस सब से भी पहले हो। 'तुम हो' का जो ज्ञान है, वह इस गुण की केवल एक लीला, एक नाट्य मात्र है। गुण अर्थात् ज्ञान। वही सत्त्व का प्रकाश है – शुद्धसत्त्व का आत्मगुण। जैसे मिठास चीनी का स्वाभाविक गुण है, उसी प्रकार ज्ञान शुद्धसत्त्व का स्वाभाविक गुण है। इसका अर्थ क्या है? केवल इतना कि 'हम हैं' – यह उपस्थिति, यह होने की अनुभूति, यही शुद्धसत्त्व का आत्मगुण है।

हमने देखा कि गुणज्ञान (गुण का ज्ञान अथवा 'मैं हूँ' की जानकारी) का उदय किस प्रकार होता है। अब श्री निसर्गदत्त महाराज यह स्पष्ट करते हैं कि यही एक गुण आगे चलकर किस प्रकार त्रिगुण—सत्त्व, रज और तम - के रूप में अभिव्यक्त होता है और उन्हीं के माध्यम से कार्य करता है।

भीतर तो केवल एक ही गुण है, पर बाहर वही तीन गुणों के रूप में प्रकट होता है। वह स्वयं को तीन भिन्न-भिन्न प्रकार से अभिव्यक्त करता है। इन तीनों गुणों में प्रधान है ज्ञानगुण—अर्थात् जाणीव *(जाननापन) का गुण। इसी गुण के कारण तुम्हें सब कुछ ज्ञात होता है। संसार में जितनी भी वस्तुएँ हैं—यंत्र, मकान, सड़कें और मनुष्य द्वारा निर्मित समस्त सृजन—ये सब किसने बनाए? ये सभी किसी न किसी के 'मैं हूँ' के ज्ञान, अर्थात् उसकी जानिव, की ही अभिव्यक्तियाँ हैं।*

सत्त्व अन्न का सूक्ष्म सार है और उसका गुण है – जाणीव *(चेतना)। यही* जाणीव *तीन प्रकार से कार्य करती है – सत्त्व, रज और तम के रूप में। ये तीनों गुण वास्तव में उसके कार्य करने की तीन भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियों या अवस्थाओं के नाम मात्र हैं। ये त्रिगुण सभी प्राणियों में स्वाभाविक रूप से, अपने आप कार्यरत रहते हैं। 'स्वाभाविक' अर्थात् बिना किसी प्रयास के, सहज ही, अपने आप। सत्त्वगुण के माध्यम से 'मैं हूँ' का बोध जागृत होता है। अपने अस्तित्व के प्रति यह जागरण ही जागृति अवस्था कहलाता है।*

रजोगुण को स्वप्नलोक कहा जाता है। उस स्वप्न-जगत में लंबे समय तक रमे रहने से एक प्रकार का नशा-सा उत्पन्न हो जाता है। जब जागृत अवस्था का भार और अधिक सहन नहीं होता, तब नींद आ जाती है - यही तमोगुण है। वास्तव में जागृत अवस्था सबसे बड़ा बोझ है; उसे निरंतर बनाए रखना संभव नहीं। इसलिए सत्त्व से रज और रज से तम की ओर स्वाभाविक गति होती रहती है। सत्त्व, रज और तम - ये तीनों मिलकर त्रिपद गायत्री (तीन चरणों वाली गायत्री अथवा त्रिगुणात्मक सत्ता) का निर्माण करते हैं। यही तीनों गुण बोलते हैं, कर्म करते हैं और समस्त व्यवहार का संचालन करते हैं।

यह शरीर अन्न पर आश्रित है। जो अन्न ग्रहण किया जाता है, उसके स्थूल अंशों के त्याग के पश्चात् उसका सूक्ष्म सार सत्त्व के रूप में प्रकट होता है। इसी सत्त्व से शरीर का पोषण और निर्माण होता है। सत्त्व का जो अत्यंत सूक्ष्म सार है, वही 'मैं हूँ' का ज्ञान है। शरीर में स्थित यह सत्त्व-सार निरंतर प्रवाहित होता रहता है और निरंतर व्यय भी होता रहता है। इसी कारण समय-समय पर भूख और प्यास का अनुभव होता है।

यह शरीर अन्न से निर्मित एक रूप है। उस अन्न का सूक्ष्म सार निरंतर प्रवाहित होता रहता है। उसी में गुण प्रकट होता है और उसी में प्राण का भी उदय होता है। शरीर की समस्त क्रियाएँ प्राण द्वारा ही संचालित होती हैं। वास्तव में यह शरीर स्वयं प्राण का आहार है। विविध कर्मों और व्यवहारों में प्रवृत्त होना रजोगुण है। और उन कर्मों का कर्तापन ग्रहण करना- 'मैंने अच्छा किया', 'मैंने बुरा किया', 'यह मैंने किया'-ऐसा मानना तमोगुण है।

आत्मज्ञान अपने ही गुण पर मोहित है; अर्थात् चेतना स्वयं को बनाए रखना और निरंतर बने रहना चाहती है। तीनों गुणों की संयुक्त क्रिया से ही अपने अस्तित्व का बोध होता है। वास्तव में कार्य करने वाले रजोगुण और तमोगुण हैं; सत्त्वगुण तो केवल साक्षी बना रहता है-द्रष्टा मात्र। अन्न से बने इस शरीर में जो 'तुम हो' का ज्ञान है, वही सत्त्वगुण का गुण है। रजोगुण कर्ता है, कर्म करने वाला है; और तमोगुण वही है जो किए गए कर्म का अभिमान करता है-मैंने किया', 'यह मेरा कार्य है'-ऐसा मानता है। ज़रा विचार करो-गुण और काया (शरीर) के अतिरिक्त वास्तव में तुम्हारा अपना और क्या है?

एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥१०-७॥

श्रीमद्भगवद्गीता के विभूति योग (अध्याय 10) में भगवान श्रीकृष्ण बार-बार उद्घोष करते हैं – “यह सब मेरी ही विभूतियाँ हैं; मैं ही सर्वत्र व्याप्त हूँ।” इसी प्रकार, गुण पर आधारित यह चेतन *जाणीव* (चेतना) भी समस्त चराचर सृष्टि में व्याप्त है। जो कुछ भी अनुभव में आता है, वह इस सचेत उपस्थिति से पृथक नहीं है। प्रत्येक अनुभव का आधार यही चेतना है। इस गुणमूलक चेतना के स्वरूप का वर्णन करते हुए श्री निसर्गदत्त महाराज आगे कहते हैं:

> *जैसे कस्तूरी मृग अपनी ही नाभि में स्थित सुगंध के स्रोत को जाने बिना उसे बाहर खोजता फिरता है, उसी प्रकार तुम्हें भी अपने ही हृदय में विराजमान वासुदेव को खोजना है। शरीर में जो ज्ञान विद्यमान है, वह ग्रहण किए गए अन्न के सूक्ष्म सार में स्थित है। उसी वासुदेव की सुगंध ‘मैं हूँ’ की अनुभूति, अर्थात् होने के बोध के रूप में प्रकट होती है। जब तक यह शरीर विद्यमान है, कम-से-कम एक बार तो उसका दर्शन कर लो। संसार उसे ‘भगवान का दर्शन’ कह सकता है, परंतु वास्तव में वह अपने ही स्वरूप का दर्शन है।*
>
> *‘मैं’ शब्द का वास्तविक अर्थ तुम्हारे अतिरिक्त और कौन जान सकता है? यह शरीर तुम्हारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। श्रीकृष्ण कहते हैं – “समस्त विभूतियों में जो महिमा है, वह मैं ही हूँ।” इसलिए भक्ति केवल बाह्य आचरण नहीं, बल्कि अपने संपूर्ण अस्तित्व और प्राणों के साथ की जाने वाली साधना होनी चाहिए। जहाँ भी देखो, केवल ‘मैं हूँ’ ही है। “यह स्थान भी मैं ही हूँ। ‘ये सब मेरी विभूतियाँ हैं’- ऐसा कहने वाला कौन है?” वह तुम्हारी ही होने की चेतना के रूप में प्रवाहित होने वाली ज्ञान-गंगा है। ये वचन बोलने वाला कौन है? वह क्या है? उसका वास्तविक स्वरूप क्या है? यह वही रहस्य है जिसका आदिकाल से संत-महात्मा और ऋषि-मुनि निरूपण करते आए हैं।*
>
> *प्रतिदिन प्रातःकाल, बिना माँगे और बिना किसी निमंत्रण के, तुम्हें भगवान का दर्शन प्राप्त होता है। जब तुम अपने ही ‘मैं हूँ’ के बोध की महिमा को पहचान लोगे, तब यह स्पष्ट हो जाएगा कि जो कुछ भी आता है और चला जाता है, वह सब उसी के ऊपर आता-जाता है।*
>
> *और क्या है जो आता-जाता है? जो कुछ भी तुम जानते हो-जो कुछ दिखाई*

देता है, जो कुछ अनुभव में आता है, जो कुछ प्रकट होता है - सब उसी के अधीन है। और जो यह कहता है- 'ये सब मेरी ही विभूतियाँ हैं', वह कोई अन्य नहीं, तुम्हारा अपना ही वास्तविक स्वरूप है।

महाराज के इस कथन का अगला महत्त्वपूर्ण शब्द है- **'क्षोभ'**। इस शब्द का अर्थ है – आकस्मिक हलचल, उथल-पुथल, प्रबल स्पंदन, तीव्र उद्वेलन अथवा विस्फोटक अशान्ति । सामान्य व्यवहार में क्षोभ शब्द का प्रयोग प्रायः तीव्र मानसिक उद्वेग, अशांति या क्रोध के प्रबल आवेग के लिए किया जाता है। जब क्रोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है – अर्थात् अतिक्रोध की स्थिति उत्पन्न होती है, तब उसे 'क्रोध का विस्फोट' कहा जाता है। इस प्रकार 'क्षोभ' शब्द अपने भीतर किसी आकस्मिक, तीव्र और शक्तिशाली प्रस्फुटन या विस्फोट का भाव समेटे हुए है।

विस्फोट का अर्थ है – किसी वस्तु का अचानक फूट पड़ना, जिसके परिणामस्वरूप अपार ऊर्जा का प्रस्फुटन हो और एक सर्वथा नई अवस्था का उदय हो। इसी अर्थ में महाराज 'गुणक्षोभ' शब्द का प्रयोग करते हैं। अर्थात् गुण का आकस्मिक उद्वेलन या विस्फोट, 'मैं हूँ' के प्रारम्भिक बोध का प्रथम स्पंदन, अथवा होने की मूल अनुभूति का अचानक प्रकट होना। यही गुणक्षोभ है।

श्री निसर्गदत्त महाराज इस **'गुणक्षोभ'** का वर्णन किस प्रकार करते हैं? आइए, अब उनके अपने ही शब्दों की ओर चलें और देखें कि वे इस गहन आध्यात्मिक रहस्य का प्रकटीकरण किस प्रकार करते हैं।

गुणक्षोभ अर्थात् 'मैं हूँ' की चेतना का आकस्मिक उदय। इसी एक चेतना के भीतर असंख्य ब्रह्मांडों का खेल चल रहा है। और इस चेतना को जानने वाला कौन है? इसका स्रोत कौन है? इसका जनक कौन है? द्रष्टा या दृश्य? - द्रष्टा!

"गुणक्षोभ का अर्थ है - अचानक 'मैं हूँ' की अनुभूति का प्रकट हो जाना। यहाँ- गुण ही आत्मा है। इसी गुणक्षोभ से माया का उदय होता है। गुण के इस प्रथम स्पंदन से पूर्व माया का कोई अस्तित्व नहीं था।"

– अनिल चुबे, ठाणे (पश्चिम)
मो.: +91 98192 14661

(शेष अगले अंक में....)

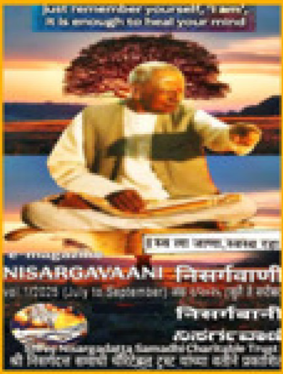

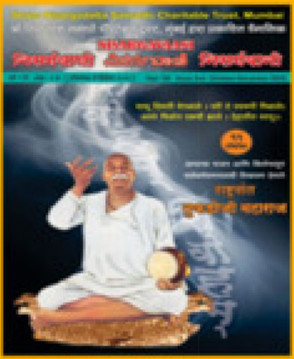

The digital journey of ***Nisargavaani*** *tri-monthly began last year with a single step into the vast world of technology. As we embark on this path, we find ourselves immersed in a realm where connectivity and information flow seamlessly across the globe. This journey will take us ahead to an ever-growing ways of communication, connectivity and responses. Embracing the digital journey means being open to change, committed to lifelong learning, and ready to harness the power of technology to bring about positive changes in numerous lives and create a brighter future for all.*